International Journal of Social Science Research (IJSSR)
Volume- 3, Issue- 1 | January - February 2026 ISSN: 3048-9490

महाकवि भर्तृहरिकृत शृङ्गारशतक में स्त्री-स्वरूप विमर्श

बिक्रम बाद्यकर [1] एवं लिंकन शरणीया [2]

[1] बिक्रम बाद्यकर, शोधछात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

[2] लिंकन शरणीया, शोधछात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश :

महाकवि भर्तृहरि कृत "शृंगारशतक" संस्कृत साहित्य की शतककाव्य परंपरा में विशिष्ट है तथा कामशास्त्रीय और दार्शनिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण काव्य है। इस ग्रंथ में कवि ने स्त्री के विविध रूपों - सौंदर्य, प्रेम, करुणा, आकर्षण, छल, और वैराग्य का गहन और यथार्थ चित्रण किया है। भर्तृहरि ने स्त्री को केवल भोग या पूजन की वस्तु नहीं माना, बल्कि उसे सृष्टि की रहस्यमयी, चेतन और प्रभावशाली शक्ति के रूप में देखा है। उनके अनुसार, स्त्री जैसे स्वर्ग का द्वार है, वैसे ही नरक का भी; जैसे अमृत है, वैसे ही विष भी। भर्तृहरि का मत है कि जब पुरुष कामभावना से ऊपर उठकर स्त्री को मनुष्य और चेतना के रूप में समझेगा, तभी समाज में संतुलन और समरसता संभव होगी। उन्होंने वेश्याओं के उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट किया कि देह का आकर्षण क्षणभंगुर है और उसका परिणाम अंततः मोह-भंग और विषाद में होता है। प्रस्तुत शोधपत्र में भर्तृहरि द्वारा 'शृंगारशतक' में प्रतिपादित स्त्री-स्वरूप, उसके द्वंद्वात्मक चरित्र, और पुरुष के प्रति उसकी सामाजिक-आध्यात्मिक भूमिका पर विचार किया जाएगा। इस प्रकार यह अध्ययन केवल शृंगार के रस का विश्लेषण नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन, विवेक और मानवीय संबंधों की गहराई का भी अनुसंधान है।

कूटशब्द – काव्य, शतक-काव्य, खण्डकाव्य, भर्तृहरि, स्त्री, वेश्या, काम

भूमिका :

भारतीय समाज में सुप्राचीन वैदिक काल से ही नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय संस्कृति में नारी कहीं मातृत्व की गरिमा से मण्डित है, तो कहीं पत्नीत्त्व के सौभाग्य से ऐश्वर्यशालिनी है, कहीं धार्मिक अनुष्ठानों की सह धर्मिणी होने से धर्मपत्नी तथा अर्धांगिनी है, तो कहीं गृह की व्यवस्थापिका होने के कारण गृहलक्ष्मी है, कहीं संभोग सुख के निमित्त से प्रेयसी तथा रम्भा है। इसलिए नारी के विविधरूप के बारे में कहा गया है कि —

"कार्येषु दासी करणेषु मन्त्री भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा।

धर्मानुकूला क्षमया धरित्री भार्या च षाड्गुण्यवतीह दुर्लभाः।।"[1]

स्त्री प्रजापति सृष्टिकर्ता ब्रह्मा का एक अपूर्व और अनुपम सृजन है। स्वयं महाकवि कालिदास ने भी कहा है –

"चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा

*Corresponding Author Email: badyakabikram693@gmail.com
Published: 18 February 2026
DOI: https://doi.org/10.70558/IJSSR.2026.v3.i1.30841
Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0).

[1] गरुड़पुराण

रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।

स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे

धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।।"[2]

किन्तु इसके साथ एक सच्चाई यह भी है कि स्त्री को कभी ठीक से समझा नहीं गया। वस्तुतः उसे समझने का प्रयास ही नहीं किया गया। यही कारण है कि स्त्री पुरुष के लिए कभी स्वर्ग का द्वार बनती है, तो कभी नरक का प्रतीक। मानव सृष्टि के प्रारम्भ से ही स्त्री और पुरुष दोनों का एक साथ उद्भव हुआ, फिर भी पुरुष आज तक स्त्री को पूर्णतः नहीं समझ सका। इसका कारण यह है कि पुरुष ने स्त्री को मनुष्य के रूप में नहीं, बल्कि देवी, शक्ति, माता या पत्नी के रूप में ही देखा। उसने स्त्री के भाव, चिंता, प्रेम, स्वभाव और उसकी कोमल अनुभूतियों को समझने का यत्न ही नहीं किया -

"स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्य देवो न जानाति कुतो मनुष्यः॥"

मनोविश्लेषण के जनक सिग्मंड फ्रायड ने यह बताया था कि –

"The great question that has never been answered, and which I have not yet been able to answer, despite my thirty years of research into the feminine soul, is – What does a woman want?"

समाज में प्रचलित इसी धारणा के अंतर्गत अनेक विचारकों और कवियों ने स्त्री के स्वरूप पर अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। इसी क्रम में महाकवि भर्तृहरि ने भी अपने श्रृङ्गारशतक में स्त्री-स्वरूप का कामशास्त्रीय दृष्टि से गहन एवं यथार्थ विश्लेषण किया है।

संस्कृत साहित्य में काव्य द्विविध होते हैं – दृश्य और श्रव्य। श्रव्यकाव्य के तीन भेद हैं – गद्यकाव्य, पद्यकाव्य और चम्पुकाव्य। पद्यकाव्य के दो भेद है - महाकाव्य और खण्डकाव्य। खण्डकाव्य के लक्षण में आचार्य विश्वनाथ कविराज ने कहा है कि —

"खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च।"[3]

अर्थात् काव्य के एक अंश का अनुसरण करनेवाला खण्डकाव्य होता है। इस खण्डकाव्य में विषय परिलक्षित होते हैं – १। विषययुक्त और २। स्वतन्त्र विषययुक्त। विषययुक्त खंडकाव्य का उदाहरण मेघदूत, गीतगोविन्द आदि है। स्वतन्त्र विषययुक्त खंडकाव्य में महाकवि भर्तृहरि के नीतिशतक, श्रृंगारशतक और वैराग्यशतक आते हैं। [4]

आचार्य भामह ने 'काव्यालंकार' में 'अनिबद्ध काव्य'[5] नामक एक काव्य-भेद का परिचय दिया। आचार्य वामन ने इस भेद को 'मुक्तक' नाम से अभिहित किया। आचार्य विश्वनाथ एवं अन्य आचार्यों ने 'शतक-काव्य' को खण्डकाव्य के अन्तर्गत माना है।[6] शास्त्रीय दृष्टि से शतक-काव्य को खण्डकाव्य कहा जाता है। इस खण्डकाव्य में जीवन के प्रत्येक

---

[2] अभिज्ञानशाकुन्तल 2/9

[3] साहित्यदर्पण - ६/३२९

[4] नीतिशतक ,भूमिका संजित कुमार साधुखाँ

[5] काव्यालंकार — सर्गबन्धोऽभिनेयार्थं तथैवाख्यायिकाकथे।
अनिरुद्धञ्च काव्यादि तत्पुनः पञ्चधोच्यते।। 1.18

[6] साहित्यदर्पण- छन्दबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तकेन मुक्तकम्।
द्वाभ्यां तु युग्मकं सन्दानितकं त्रिभिरिष्यते।। 6.314-15

पक्ष का सर्वांगीण वर्णन मिलता है। जहाँ महाकाव्य में मानव-जीवन का सामग्रिक प्रसार है, वहीं शतक-काव्य में जीवन की एकदेशीयता की तन्मयता है। इसमें प्रधानतः जीवन के श्रृंगारिक, धार्मिक अथवा नैतिक विषय ही स्थान पाते हैं। श्रृंगारपरक शतककाव्य या खण्डकाव्य में महाकाव्य के समान ही आह्लादकत्व विद्यमान रहता है। ध्वनिप्रस्थान परमाचार्य आनन्दवर्धन ने अमरूशतक के पद्यों का उल्लेख करते हुए कहा है कि —

"मुक्तेषु हि प्रबन्धेष्विव रसबन्धाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते।

यथा ह्यमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः श्रृङ्गाररसस्यन्दिनः प्रबन्धायमानाः प्रसिद्धा एव।"[7]

'ये मुक्तक-काव्य होने पर भी यह इस प्रकार श्रृंगार रस के निष्यन्दी हैं, मानो एक एक पद्य के पीछे एक पूरे महाकाव्य की योजना है।'[8]

खण्डकाव्य की उत्पत्ति के विषय में डॉ. रमा सिंह अपने 'शतक-काव्य की परम्परा' (2021) नामक शोध-पत्र में एक युक्तिपूर्ण संभावना प्रस्तुत करती हैं।[9] उनके मतानुसार, प्राचीनकाल में गोष्ठियों का प्रचलन था। कविगण इन गोष्ठियों में अपनी रचनायें प्रस्तुत किया करते थे तथा भावुक पाठक उनके गुण एवं दोष पर विचार करते थे। इस प्रकार की गोष्ठियों में किसी एक कवि के द्वारा पूरे महाकाव्य का वाचन सम्भव नहीं था। इसलिए निर्दर्शन के रूप में कवि अपने महाकाव्य में से कुछ अपनी रुचि के स्थलों को चुनकर अथवा कुछ कवि स्वतन्त्र रूप से अपने ही पद्यों का वाचन करते थे। यही परम्परा धीरे धीरे खण्डकाव्य के रूप में जानी लगी। सर्वप्रथम महाकवि कालिदास ने 'मेघदूत' और 'ऋतुसंहार' नामक खण्डकाव्यों की रचना की। यही खण्डकाव्य अनेक रूपों में विकसित हुए। यथा - श्रृंगारिक काव्य तथा स्तोत्र काव्यादि।

इस शतक काव्य या खंडकाव्य की परम्परा में महाकवि भर्तृहरि एक महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में प्रतिष्ठित है। अपने इस शतकत्रय के माध्यम से रसासिद्ध कवीश्वरों में से इन्होंने एक प्रमुख स्थान लाभ किया। महाकवि भर्तृहरि प्राचीन भारत के प्रसिद्ध कवि, दार्शनिक और नीति–शास्त्री थे। उनका जीवन अत्यंत रहस्यमय किंतु प्रेरणादायक रहा है। वे उज्जयिनी (वर्तमान उज्जैन) के राजा विक्रमादित्य के भ्राता माने जाते हैं। कहा जाता है कि वे अपनी रानी पिंगला से अत्यधिक प्रेम करते थे। एक बार किसी तपस्वी ने फल दिया और उस तपस्वी ने कहा कि यह खाने से वह सदैव जवान बने रहेंगे, कभी बुढ़ापा नहीं आएगा, सदैव सुंदरता बनी रहेगी। भर्तृहरि ने वह फल अपनी रानी पिंगला को दे दिया, परंतु पिंगला ने वह किसी अन्य प्रिय को दे दिया, और अंततः वह फल एक वेश्या से होकर फिर से राजा के पास पहुँच गया। जब यह बात भर्तृहरि को ज्ञात हुई तो उन्हें संसार की असारता का बोध हुआ। उस प्रियतमा पिंगलाको, ख़ुद को और कामदेव को धिक्कार देते हुए कहा –

"यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता

साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।

अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या

---

[7] ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत

[8] डॉ. रमा सिंह अपने 'शतक-काव्य की परम्परा' (2021)
https://www.anantaajournal.com/archives/2021/vol7issue3/PartB/9-3-18-735.pdf

[9] https://www.anantaajournal.com/archives/2021/vol7issue3/PartB/9-3-18-735.pdf

धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च।।"[10]

'मैं जिसका सतत चिंतन करता हूँ वह (पिंगला) मेरे प्रति उदासीन है। वह (पिंगला) भी जिसको चाहती है वह दूसरा पुरुष तो कोई दूसरी ही स्त्री (वेश्या) में आसक्त है। वही स्त्री मेरे प्रति प्रेमभाव रखती है। उस (पिंगला) को धिक्कार है ! उस (दूसरे) पुरुष को धिक्कार है ! उस (वेश्या) को धिक्कार है ! उस कामदेव को धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार है !'

इसके बाद, वे वैराग्य से भर गए और राजपाट त्यागकर संन्यासी बन गए। तत्पश्चात् उन्होंने तीन प्रसिद्ध शतक रचे—नीतिशतक, श्रृंगारशतक और वैराग्यशतक। इन ग्रंथों में मानव जीवन के तीन प्रमुख पक्षों—नीति, प्रेम, और वैराग्य—का गहन दर्शन मिलता है। भर्तृहरि की रचनाएँ न केवल साहित्यिक दृष्टि से, बल्कि आध्यात्मिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने जीवन के मोह-माया से ऊपर उठकर आत्मबोध का संदेश दिया, जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है। प्रस्तुत शोधपत्र में महाकवि की श्रृंगारिक एवं वैरागी दृष्टि से स्त्रीस्वरूप का विवेचन किया जाएगा।

पर्यालोचना : "वैराग्ये सञ्चरत्येको नीतौ भ्रमति चापरः।

श्रङ्गारे रमते कश्चिद् भुवि भेदाः परस्परम्।।"[11]

'कोई व्यक्ति वैराग्य (त्याग) के मार्ग में चलता है, कोई नीति (धर्म, सदाचार) के मार्ग में भ्रमण करता है, और कोई श्रृंगार (भोग, प्रेम, सौंदर्य) में रमण करता है। इस प्रकार इस पृथ्वी पर मनुष्यों की प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे से भिन्न हैं।'

महाकवि भर्तृहरि के मत में, परिवर्तनशील इस संसार में पंडितों की दो ही गतियाँ होतीं हैं – तत्त्वज्ञान रूप अमृत के सरोवर में गोते लगाना या स्तन-जघन के विस्तार में संसर्ग की कामना करने वाली मुग्धा-अंगनाओं के स्मरमंदिर के स्थूल भूमि पर करतल स्पर्श करते हुए क्रीड़ा में उद्यत रहना।[12]अर्थात् उनके मत में, कुछ विद्वान ज्ञान और वैराग्य में रमते हैं, जबकि कुछ मोह-माया और भोग-विलास में डूबे रहते हैं, क्योंकि संसार में पुरुषों के लिए सेवनयोग्य तो दो ही विषय हैं – सुंदरियों के अभिनव मदलीला से युक्त पुष्ट वक्षस्थल के भर से लसित यौवन अथवा वन।[13] जब सम्पूर्ण विश्व में दो ही विषय शेष रहें, तो मार्ग भी दो ही बनेंगे—यह तो सरल गणित है। किन्तु स्त्री मोहिनी-स्वरूपा भी होती है — उसका प्रत्येक अङ्ग पुरुष-चित्त को बलात् हरण कर अपने ही रंग में रङ्ग देता है। अतः स्त्री स्वयमेव पुरुष के लिए एक अनिवचनीय मार्ग रच डालती है।

स्त्री के मनोहारिणी स्वरूप का वर्णन करते हुए भर्तृहरि ने लिखे हैं — जिन्होंने अपने कंकणों और करधनी में युक्त घुँघरुओं के शब्द से तथा नूपुरों की झंकार से राजहंसियों के मधुर कलकल निनाद और मन्दगति को जीत लिया है, वे तरुणियाँ भयमुग्ध हरिणी के समान कटाक्षों से किसके मन को वश में नहीं कर लेतीं?[14] आगे भी कहते हैं कि केसर की उबटन से जिसका शरीर कान्तियुक्त हो रहा है, जिसके गोरे पयोधर पर हार झूलता है, जिसके पदपद्म में नूपुररूप हंस विहार कर रहे हैं, ऐसी सुन्दरी किसे नहीं जीत लेती?[15] महाकवि कहता है कि स्त्री के संवारे हुए केश, कान तक पहुँचते हुए नेत्र, स्वच्छ दन्तपंक्तियों के युक्त मुख, मुक्तावलियों से सुशोभित कुम्भ के समान वक्ष इस प्रकार है कि वह

[10] नीतिशतक श्लोक 2

[11] श्रृंगारशतक 88

[12] तदेव 20

[13] तदेव 48

[14] श्रृंगारशतक 8

[15] तदेव 9

लेखक के ही चित्त में क्षोभ उत्पन्न कर रहा है।[16] चित्त का हरण या उसमें क्षोभ उत्पन्न करने के लिए स्त्री को आयुध या अस्त्र की आवश्यकता होती है। इसी आयुध पर भर्तृहरि ने कहा है कि —- भ्रूचातुर्यपूर्वक कटाक्ष करना, मधुर वचन कहना, लज्जा दिखाते हुए हंसना, लीला पूर्वक मन्द गति से चलना आदि भाव स्त्रियों के भूषण और आयुध हैं।[17] इसलिए स्त्री कभी दुर्बला नहीं हो सकती, स्त्री सबला है —

"नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधा

ये नित्यमाहुरबला इति कामिनीनाम्।

याभिविलोलतरतारकदृष्टिपाते:

शक्रादयोऽपि विजितास्त्वबला: कथिता:।।"[18]

अर्थात् वे कविवर विपरीत मति वाले हैं, जो स्त्रियों को अबला कहा करते हैं। क्योंकि जो चंचल दंष्टि की मार से इन्द्रादि को भी जीतने में समर्थ हैं, वे अबला कैसे से कही जा सकती हैं?

और जिन ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर जैसे सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता देवता स्वयं कामदेव के प्रभाव से गृहकर्म के आज्ञाकारी दास बन जाते हैं[19], वही कामदेव भी स्त्री की आज्ञा का दास है। श्रृंगारशतककार कहते हैं — अवश्य ही कामदेव सुन्दर भृकुटी वाली इन स्त्रियों का आज्ञाकारी दास है, क्योंकि यह जिसकी ओर नेत्र चलाती हैं, उधर ही कामदेव अपना कार्य आरम्भ कर देता है –

"नूनमाज्ञाकरस्तस्याः सुभ्रूवो मकरध्वज:।

यतस्तन्नेत्रसञ्चारसूचितेषु प्रवतते।।"[20]

इसके माध्यम से कवि यह स्पष्ट करते हैं कि स्त्री की दृष्टि में अपार आकर्षण और सृष्टि-प्रेरक शक्ति निहित है। आगे कवि स्त्री के दृढ़चित्तता के विषय में कहते हैं कि "प्रेम के समारम्भ में जो स्त्री जिस काये को करने में प्रवृत्त होती है, उस कार्य से उसे ब्रह्मा भी नहीं हटा सकता।"[21] यहाँ कवि ने स्त्री के चित्त की दृढ़ता का संकेत दिया है। सामान्यतः स्त्री को कोमल हृदया कहा गया है, परंतु जब उसके हृदय में प्रेम का संकल्प दृढ़ हो जाता है, तब वह अचल पर्वत के समान स्थिर हो जाती है। उसके इस निश्चय को कोई भी देवता, यहाँ तक कि ब्रह्मा भी परिवर्तित नहीं कर सकते।

स्त्रियाँ अपने रूप, सौंदर्य और भावभंगिमा से पुरुषों को सम्मोहित करती हैं। वे कभी मधुर मुस्कान से मद उडेलती हैं, तो कभी चतुराई से विडम्बना या भर्त्सना करती हैं। प्रेम में रमण करती हुईं वे क्षणभर में विषाद से भी भर उठती हैं। उनके हृदय के भाव अत्यंत सूक्ष्म और परिवर्तनीय होते हैं। इस प्रकार स्त्रियाँ पुरुषों के मन में गहराई से प्रवेश कर उसे अपने आकर्षण में बाँध लेती हैं—वे क्या नहीं करतीं! —

"सम्मोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति निर्भत्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति।

---

[16] तदेव 13

[17]तदेव 3

[18] तदेव 10

[19] श्रृंगारशतक 1

[20] श्रृंगारशतक 11

[21] तदेव 55

एता: प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां कि नाम वामनयना न समाचरन्ति।।"[22]

इसलिए नारी पुरुषों के लिए कभी कभी स्वर्ग के समान प्रतीत होती है। जब प्रियतमा खिले हुए मालती पुष्पों की सुगंधित माला धारण किए हो, केशर मिश्रित चन्दन का मनोहर लेप शरीर पर लगाए हो और वह प्रेमभाव से हृदय से लगी हो—तो वही क्षण, वही आलिंगन, साक्षात् स्वर्ग का अनुभव कराता है। उस समय मन, शरीर और आत्मा सभी प्रेमरस में डूब जाते हैं। भर्तृहरि कहते हैं कि जब सांसारिक प्रेम अपनी पराकाष्ठा को छूता है, तब किसी स्वर्ग या मोक्ष की कल्पना तुच्छ प्रतीत होती है; ऐसे क्षणों में शास्त्रों द्वारा बताया गया स्वर्ग भी व्यर्थ लगता है, क्योंकि सच्चा आनंद तो यहीं है —

"मालती शिरसि जृम्भणोन्मुखी चन्दनं वपुषि कुंकमान्वितम्।

वक्षसि प्रियतमा मनोहरा स्वर्ग एष: परिशिष्ट आगमः।"[23]

वे कहते हैं कि जो पुरुष रतिश्रम से खिन्न होकर अपनी प्रेयसी के उन्नत पयोधर (स्तनों) के तट से स्पर्श करते हुए, उसके बाहुपाशों से आबद्ध होकर, उस मदोन्मत्त गजराज के गण्डस्थल के समान विस्तीर्ण अपने वक्षस्थल पर सिर रखकर क्षणभर के लिए भी निद्रा प्राप्त करता है, वही धन्य है —

"मत्तेभकुम्भपरिणाहिनि कुंकुमार्द्रे

कान्तापयोधरतटे रसखेदखिन्नः।

वक्षो निधाय भुजप जरमध्यवर्ती

धन्यः क्षपां क्षपयति क्षणलब्धनिद्रः॥"[24]

"स्त्री स्वर्ग है" - यह धारणा भर्तृहरि के अनुसार एक प्रकार का मोहजनित भ्रम है। यद्यपि स्त्री रूप, स्नेह और कोमलता के कारण पुरुष को क्षणिक आनंद प्रदान करती है, परंतु वह आनंद स्थायी नहीं होता। निरंतर सुख या शांति स्त्री से प्राप्त नहीं की जा सकती। जब मनुष्य आत्मानुभूति और ब्रह्मज्ञान की ओर अग्रसर होता है, तब यही स्त्री उसके मार्ग की सबसे बड़ी बाधा बन जाती है। उस समय वही रूप, जो पहले आनंद का स्रोत था, अब विष समान पीड़ादायी प्रतीत होता है। भर्तृहरि कहते हैं—जब तक स्त्री नेत्रों के समक्ष रहती है, तब तक वह आकर्षण और मोह की मूर्ति होती है; किंतु जब वह दृष्टि से ओझल हो जाती है, तब वही स्मृति अत्यंत विषाद उत्पन्न करती है।[25] इस प्रकार स्त्री न तो पूर्ण अमृत है, न ही सर्वथा विष; वह दोनों का अद्भुत संगम है। जब पुरुष उससे अनुरक्त होता है, तब वह अमृतलता की भाँति सुखद प्रतीत होती है, पर जब वैराग्य उदय होता है, तब वही स्त्री विषवृक्ष की वल्लरी बनकर दुख का कारण बन जाती है।[26] यही भर्तृहरि के स्त्री-स्वरूप की गूढ़ और यथार्थ व्याख्या है।

महाकवि भर्तृहरि ने अपने गहन अनुभव और तीव्र विवेक से स्त्री की वास्तविकता का अत्यंत यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। वे स्पष्ट कहते हैं कि स्त्रियों का मुख वास्तव में चंद्रमा नहीं है, न उनके नेत्र कमल हैं और न ही उनका शरीर स्वर्ण से बना है। यह सब कवियों की कल्पना और काव्यिक अतिशयोक्ति का परिणाम है। परंतु मंदबुद्धि पुरुष, इन काव्यरूप

[22] तदेव 21

[23] श्रृंगारशतक 24

[24] तदेव 98

[25] तदेव 67

[26] तदेव 68

बहकावे में आकर, मांस, रक्त और अस्थियों से बने स्त्री-शरीर को सुंदरता और सुख का परम स्रोत मान बैठते हैं। वे इस देह-मोह में फँसकर अपने विवेक को खो देते हैं।[27] भर्तृहरि व्यंग्यपूर्वक कहते हैं कि मूर्ख पुरुष स्त्रियों के स्वाभाविक हावभाव, मुस्कान और लज्जा को अपने प्रति अनुराग का संकेत समझकर व्यर्थ ही मोहित होते रहते हैं। जिस प्रकार भौंरा कमलिनी के स्वाभाविक लाल रंग को अपने लिए ही बना मानकर उसके चारों ओर व्यर्थ चक्कर काटता है, वैसे ही पुरुष भी स्त्रियों के सहज आकर्षण में उलझ जाते हैं।[28]महाकवि के अनुसार, स्त्रियाँ किसी एक से बात करती हैं, दूसरे को ललित दृष्टि से देखती हैं और तीसरे को हृदय में चाहती हैं। अतः यह कहना कठिन है कि वास्तव में उनका प्रिय कौन है।[29] वैरागी कवि भर्तृहरि आगे कहते हैं कि संसार रूपी महासागर में कामदेव ने स्त्री के रूप में एक आकर्षक जाल बिछा रखा है, जिसमें पुरुष रूपी मछलियाँ उसके अधर-मधुर रस की लालसा में फँस जाती हैं और अंततः उसी अनुराग रूपी अग्नि में जलती रहती हैं। वे मन को चेतावनी देते हैं—

"हे मनरूपी पथिक! कामिनियों के देहरूपी वन और वक्षस्थलरूपी दुर्गम पर्वत में मत प्रवेश कर, क्योंकि वहाँ कामदेव रूपी लुटेरा वास करता है।"[30]

अंततः भर्तृहरि निष्कर्ष देते हैं कि जब आत्मा योगाभ्यास में लीन होती है, जब विवेक और आत्मस्फुरणा एकाकार हो जाते हैं, तब योगी पुरुष को स्त्रियों के मधुर वचन, सुगंधित श्वास, मुखामृत या स्पर्श-सुख की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।[31] जब मन कामरूपी अंधकार में डूबा होता है, तब समस्त संसार उसे नारीमय प्रतीत होता है; पर जब विवेक का अंजन नेत्रों में लग जाता है, तब वही दृष्टि सम्पूर्ण त्रिभुवन में केवल ब्रह्मस्वरूप का दर्शन करती है –

"यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसञ्चारजनितं तदा सर्वे नारीमयमिदमशेषं जगदभुत्।

इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनदृशां समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते।।"[32]

यही भर्तृहरि की दृष्टि का सार है—स्त्री को उन्होंने न तो घृणास्पद माना, न ही ईश्वरतुल्य; बल्कि उसे मोह और विवेक के बीच झूलती मानव चेतना की परीक्षा-परीक्षा भूमि के रूप में देखा है।

भर्तृहरि ने अपने श्रृंगारशतक में जहाँ एक ओर स्त्री-सौंदर्य के आकर्षण और मोह का सूक्ष्म विश्लेषण किया है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने वेश्याओं के विषय में अत्यंत कठोर किंतु यथार्थ दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं—जो स्त्रियाँ अल्प धन के लोभ में अपने मनोहर शरीर को किसी भी पुरुष को अर्पित कर देती हैं, वे वास्तव में विवेक की लता को जड़ से काटने वाली होती हैं। जन्म से अंधे, कुरूप, वृद्ध, ग्राम्य, दुष्कुलीन या कुष्ठरोगी पुरुषों के साथ केवल धन के लिए रमण करने वाली वेश्याओं से कोई विवेकशील पुरुष संबंध रखना नहीं चाहेगा।[33] भर्तृहरि के अनुसार, वेश्या रूपी स्त्री वह अग्नि है जो सौंदर्य के ईंधन से प्रज्वलित होकर कामाग्नि का भयंकर रूप धारण करती है। उस अग्नि में कामी पुरुष अपने यौवन, धन और बुद्धि की आहुति देते हैं —

"वेश्यासौ मदनज्वाला रूपेन्धनसमेधिता।

---

[27] श्रृंगारशतक 70

[28] तदेव 71

[29] तदेव 72

[30] तदेव 76

[31] तदेव 85

[32] श्रृंगारशतक 87

[33] श्रृंगारशतक 78

कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥"[34]

इसी सम्बन्ध एक श्लोक मिलता है – वेश्या साक्षात् राक्षसी है, क्योंकि वह देखने से चित्त को, छुने से बलको ओर मेथुन से वीर्य को हरती है —

दर्शनात् हरते चित्तं स्पर्शनात् हरते बलम्।

मैथुनात् हरते वीर्यं वेश्या प्रयक्षराक्षसी ॥

वे चेतावनी देते हैं कि वेश्या के अधर पल्लव यद्यपि देखने में अत्यंत मनोहर प्रतीत होते हैं, परंतु कुलीन और विवेकी पुरुष उनके चुम्बन का विचार भी नहीं करते, क्योंकि वे अधर अनेक कामी, ठग, योद्धा, चोर, दास, नट और जारों के स्पर्श से अपवित्र हो चुके होते हैं। भर्तृहरि के शब्दों में, वेश्या का मुख मानो उस 'पीकदान' के समान है, जिसमें समाज के पतित और वासनाग्रस्त पुरुष अपनी लोलुपता की गंध छोड़ जाते हैं –

"कश्चुम्बति कुलपुरुषो वेश्याधरपल्लवं मनोज्ञमपि।

चारभटचोरचेटकविटनटनिष्ठीवनशरावम्।।"[35]

अर्थात् 'वेश्याओं का अधरपल्लव मनोहर होते हुए भी उसका चुम्बन कुलीन पुरुष नहीं किया करते, क्योंकि वह तो ठग, योद्धा, चोर, दास, नट या जारों के थूकने का पीकदान है।'[36]

इस प्रकार भर्तृहरि ने वेश्या को केवल देह का व्यापार करने वाली स्त्री के रूप में नहीं, बल्कि उस रूप-मोह की मूर्ति के रूप में देखा है, जो पुरुष के विवेक, धन और यौवन—तीनों का भस्म कर देती है। उनका उद्देश्य स्त्रियों का अपमान नहीं, बल्कि पुरुष को चेताना है कि वह देह के क्षणिक सुख में अपना आत्मबल न खोए, क्योंकि यह मार्ग अंततः विनाश की ओर ले जाता है।

निष्कर्ष :

महाकवि भर्तृहरि ने स्त्री के विविध रूपों— प्रेयसी, मोहिनी, स्वर्ग, नरक, अमृत, विष —सभी का अत्यंत सूक्ष्म और गहन चित्रण किया है। परंतु इतने विस्तार से वर्णन करने के बाद भी वे किसी एक निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते। इसका कारण यही है कि स्त्री का प्राकृत या वास्तविक स्वरूप अब तक ठीक से जाना ही नहीं गया है। समाज ने उसके असली अस्तित्व को समझने के बजाय उसे या तो महामानवी बना दिया या मात्र भोग्या के रूप में सीमित कर दिया। सच्चा आनंद और सच्ची मुक्ति तो तभी संभव है जब स्त्री अपने असली स्वरूप को जाने, और पुरुष भी उसे उसी रूप में समझे—न कि केवल आकर्षण या पूजन के पात्र के रूप में। जब यह परस्पर समझ विकसित होगी, तभी स्त्री और पुरुष के बीच का लंबा फासला समाप्त होगा। यह भी ध्यान देने योग्य है कि पुरुष को स्त्री को काम से परे की दृष्टि से देखना चाहिए। भारतवर्ष में स्त्री को सदा 'देवी' और 'माता' के रूप में पूजनीय माना गया है। फिर भी शास्त्रों ने "मातृवत् परदारेषु" का विधान इसलिए दिया कि कोई पुरुष परस्त्री को कामभाव से न देखे। यही कारण है कि ऋषियों ने 'गुरुपत्नीगमन' को महापाप की श्रेणी में रखा, क्योंकि उस समय कुछ शिष्य गुरुपत्नी में भी कामभाव से आसक्त हो उठते थे। अतः भर्तृहरि के श्रृंगारशतक का गूढ़ संदेश यह है कि कामभावना से ऊपर उठकर स्त्री को मनुष्य, संवेदना

[34] तदेव 79

[35] श्रृंगारशतक 80

[36] अनुवादक

और चेतना के रूप में जानना चाहिए। वस्तुत:, जब पुरुष उसकी देह नहीं, बल्कि उसकी आत्मा को समझने का प्रयत्न करेगा, तभी स्त्री समाज अपनी कोमलता, करुणा और सृजनशीलता से पुनः खिल उठेगा। यही जीवन का संतुलन और सच्चा 'श्रृंगार' है—जहाँ पुरुष और स्त्री दोनों अपनी मानवता के पूर्ण स्वरूप में प्रतिष्ठित होते हैं।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. गौतम, डॉ. चमनलाल (टीकाकार). शतकत्रय (महाकवि भर्तृहरि विरचित). बरेली: संस्कृति संस्थान, 1974.
2. वैद्य, हरिदास (अनुवादक) . श्रृंगारशतक. कलकाता: हरिदास एंड कम्पनी, 1925.
3. शर्मा, देवेन्द्रनाथ (भाष्यकार). काव्यालंकार (भामह विरचित). पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, द्वितीय संस्करण, 1985.
4. शुक्ल, आचार्य चण्डिकाप्रसाद (टीकाकार). ध्वन्यालोक . वाराणसी : विश्वविद्यालय, द्वितीय संस्करण, 2004.
5. शास्त्री, शालिग्राम (टीकाकार). साहित्यदर्पण(विश्वनाथकविराज कृत). दिल्ली: भारतीय कला प्रकाशन, संशोधित संस्करण 2008.
6. चक्रवर्ती, सत्यनारायण (सम्पादक) . अभिज्ञानशाकुन्तलम्. कलकाता: संस्कृत पुस्तक भण्डार, अष्टम संस्करण, 2013.
7. उपाध्याय, आचार्य बलदेव. संस्कृत साहित्य का इतिहास. वाराणसी : शारदानिकेतन, दशम संस्करण 2001.
8. साधुखाँ, संजित कुमार एवं साधना, सरकार (संपादक). नीतिशतक. कलाकाता: संस्कृत बुक डिपो, 2018.
9. सिंह, डॉ. रमा. "शतक-काव्य की परम्परा". International Journal of Sanskrit Research 7(3) , 2021: 137-139.